E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

स्वामी विवेकानन्द के दृष्टिकोण में शिक्षक एवं शिक्षार्थी की संकल्पना तथा शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध का अध्ययन

शालिनी झा[1] (शोधार्थी)
डॉ. संगीता तिवारी[2] (शोध निदेर्शिका)
(शिक्षा विभाग)आई. ई. एस. विश्वविद्यालय
भोपाल, रातीबड़

Paper Received date
05/10/2025
Paper Publishing Date
10/10/2025
DOI
https://doi.org/10.5281/zenodo.17620627

IMPACT FACTOR
5.924

(शोध सार)

(प्रस्तुत शोध पत्र में स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों, शिक्षक-शिक्षार्थी की संकल्पना तथा गुरु-शिष्य सम्बन्ध की प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि शिक्षा केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के सर्वांगीण विकास, चरित्र निर्माण और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का माध्यम है। उन्होंने शिक्षक को मात्र ज्ञान देने वाला नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माता के रूप में देखा, जो अपने आचरण, अनुशासन एवं आदर्शों के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रेरित करता है। उन्होंने शिक्षक को आध्यात्मिक पिता तथा शिष्य को उसका मानस पुत्र बताया, जिससे गुरु-शिष्य सम्बन्ध एक गहन जीवन निर्माण प्रक्रिया बन जाती है। विवेकानन्द के अनुसार शिक्षार्थी को सत्य की खोज, आत्मविकास, सामाजिक उत्तरदायित्व और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उन्होंने ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-निग्रह, संयम, जिज्ञासा एवं दृढ़ इच्छाशक्ति जैसे गुणों को शिक्षार्थी के व्यक्तित्व में आवश्यक माना। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उन्होंने परम्परा और आधुनिकता का संतुलन स्थापित करने पर बल दिया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा में केवल सूचनाओं का प्रसारण न होकर व्यक्तित्व विकास, मानवीय मूल्यों का संवर्धन और सामाजिक चेतना का निर्माण होना चाहिए। वर्तमान समय में उनके विचार शिक्षा प्रणाली को नैतिकता, व्यवहारिकता और मानवीय दृष्टिकोण से सशक्त बनाने की दिशा में मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं। अतः यह शोध पत्र स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दर्शन के माध्यम से शिक्षक-शिक्षार्थी संबंधों की पुनर्परिभाषा और आधुनिक शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।)

शब्द कुंजी : शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध, गुरु-शिष्य परम्परा, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, नैतिक शिक्षा, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, लोकतांत्रिक मूल्य, मानवीय दृष्टि, आधुनिक शिक्षा, प्रेरक शिक्षक, भारतीय संस्कृति

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

1. प्रस्तावना

आज के युग में जिस तीव्र गति से बाजारवाद और वैश्वीकरण का विस्तार हो रहा है, उसी तीव्रता से शिक्षा का व्यावसायीकरण एवं विसंस्कृतिकरण भी बढ़ता जा रहा है। शिक्षा अब केवल ज्ञानार्जन, व्यक्तित्व विकास और संस्कृति के संरक्षण का माध्यम न रहकर एक आर्थिक साधन के रूप में सीमित होती जा रही है। प्लेटो और अरस्तू ने शिक्षा को "आंतरिक व्याधि का आंतरिक इलाज" कहा था और रूसो ने इसे व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का साधन बताया था, किंतु वर्तमान समय में शिक्षा की प्रासंगिकता केवल नौकरी प्राप्ति के साधन के रूप में सिमट गई है। शिक्षा से राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति, सांस्कृतिक गौरव, सांप्रदायिक सौहार्द और मानवीय मूल्यों जैसे तत्त्व तेजी से लुप्त हो रहे हैं। आज की शिक्षा प्रणाली में यह विरोधाभास स्पष्ट दिखाई देता है कि जितना कोई व्यक्ति शिक्षित होता है, वह उतना ही इन मूल्यों से दूर होता जा रहा है। इसके विपरीत, कम पढ़े-लिखे अथवा अशिक्षित लोग अभी भी इन मूल्यों के पोषक के रूप में सामने आते हैं। यह प्रवृत्ति इस बात की ओर संकेत करती है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मूल्य शिक्षा का समुचित समावेश नहीं हो पा रहा है। साथ ही, भारतीय शिक्षा पद्धति आज भी अपनी पुरानी, घिसी-पिटी और औपनिवेशिक संरचनाओं में बंधी हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी इसका भारतीयकरण नहीं हो सका है, जिससे शिक्षा का स्वरूप न तो स्थानीय संदर्भों से जुड़ पाया है और न ही वह आधुनिकता के अनुरूप कोई संतुलित रूप ले पाया है।

वर्तमान समय में मनुष्य की जीवन पद्धति, व्यवहार और विचारों में एक व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है, जो मुख्यतः पाश्चात्य संस्कृति के आधुनिकीकरण का परिणाम है। आधुनिक तकनीकी साधनों, संचार माध्यमों और वैश्विक बाजार के प्रभाव से भारतीय समाज में सांस्कृतिक चेतना धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही है। हमारी गौरवमयी परंपराएँ, सांस्कृतिक धरोहर और नैतिक मूल्य आधुनिक जीवनशैली की चमक-दमक के सामने धूमिल पड़ते जा रहे हैं। यह स्थिति शिक्षा प्रणाली की भूमिका पर प्रश्नचिह्न लगाती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना या कौशल प्रदान करना नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे ऐसे नागरिक तैयार करने चाहिए जो राष्ट्र के प्रति निष्ठावान हों, सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षक हों और मानवीय सह-अस्तित्व में विश्वास रखते हों। दुर्भाग्यवश, आज की शिक्षा प्रणाली में इन मूल्यों का समुचित समावेश न तो पाठ्यचर्या में है और न ही शिक्षण-प्रक्रियाओं में। नीतिगत स्तर पर भी शिक्षा को केवल आर्थिक प्रगति और प्रतिस्पर्धा के दृष्टिकोण से देखा जा रहा है। परिणामस्वरूप, छात्रों में सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिकता, संवेदनशीलता और सांस्कृतिक पहचान का विकास अपेक्षित रूप से नहीं हो पा रहा है। यह स्थिति केवल शैक्षिक संस्थानों तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज के राजनीतिक, साहित्यिक और सामाजिक मंचों पर भी जीवन मूल्यों के पुनः प्रतिष्ठापन की मांग उठ रही है।

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

इन परिस्थितियों में यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में एक गहन दार्शनिक पुनर्विचार की आवश्यकता है। शिक्षा केवल तकनीकी ज्ञान या व्यावसायिक दक्षता प्रदान करने का साधन नहीं, बल्कि समाज में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना का प्रमुख माध्यम होनी चाहिए। जब मूल्य कमजोर पड़ने लगते हैं तो सामाजिक संरचना भी डगमगाने लगती है। इसलिए, ऐसे समय में यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि हम अपने शैक्षिक दार्शनिकों के विचारों की ओर लौटें। भारतीय शिक्षा दर्शन में आचार्य अरविन्द, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद, रविन्द्रनाथ टैगोर जैसे दार्शनिकों ने शिक्षा को जीवन मूल्यों, आत्मानुशासन, आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक चेतना के विकास का साधन बताया है। उनके विचारों में शिक्षा को व्यक्ति और समाज के समग्र उत्थान का उपकरण माना गया है। अतः आज की शिक्षा व्यवस्था में यदि इन दार्शनिक विचारों को पुनः केंद्र में लाया जाए, तो शिक्षा पुनः अपनी मूल भूमिका में आ सकती है। इस दिशा में पाठ्यक्रम में मूल्य शिक्षा का समावेश, शिक्षक प्रशिक्षण में मूल्यपरक दृष्टिकोण, विद्यालयी वातावरण में नैतिक आचरण का विकास और नीतिगत स्तर पर सांस्कृतिक चेतना को प्राथमिकता देना अनिवार्य हो जाता है। जब शिक्षा मूल्य आधारित होगी, तभी वह राष्ट्र के सांस्कृतिक एवं सामाजिक पुनर्जागरण का माध्यम बन सकेगी। इस प्रकार, शिक्षा के व्यावसायीकरण और विसंस्कृतिकरण के इस युग में शिक्षा दर्शन पर आधारित नये मूल्यबोध की स्थापना अत्यंत प्रासंगिक और आवश्यक प्रतीत होती है।

2. शिक्षक की संकल्पना

शिक्षक की संकल्पना को स्पष्ट करने से पूर्व महाभारत के युद्धभूमि में भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ संवाद एक अत्यंत प्रेरणादायक दृष्टांत के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जो शिक्षा में शिक्षक के स्थान की सर्वोच्चता को सिद्ध करता है। जब भगवान श्रीकृष्ण समाधि में स्थित थे, तब उन्होंने अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश दिया। यह उपदेश केवल एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को दिए गए सामान्य शब्द नहीं थे, बल्कि वह संपूर्ण ज्ञान-समष्टि की अभिव्यक्ति थी। युद्ध समाप्त होने के बाद अर्जुन ने जब भगवान श्रीकृष्ण से पुनः वही उपदेश सुनाने की इच्छा व्यक्त की, तब उन्होंने कहा कि वे उसे दोहरा नहीं सकते क्योंकि वह उपदेश उन्होंने समाधि अवस्था में दिया था। उस अवस्था में वे एक साधारण व्यक्ति नहीं थे, बल्कि ज्ञान के सर्वोच्च स्रोत से प्रेरित होकर बोल रहे थे। इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि जब एक सच्चा शिक्षक ज्ञान प्रदान करता है, तब वह केवल व्यक्तिगत अनुभवों या सूचनाओं का संप्रेषण नहीं करता, बल्कि वह अपने भीतर स्थित व्यापक ज्ञान, आध्यात्मिक चेतना और अनुभव की गहराइयों से बोलता है। इसलिए छात्र को शिक्षक के वचनों को केवल पाठ्य सामग्री के रूप में नहीं, बल्कि मूल्यवान दिशा-निर्देश के रूप में ग्रहण करना चाहिए। यही कारण है कि भारतीय शिक्षा परंपरा में शिक्षक को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। शिक्षक ही वह माध्यम है जो ज्ञान को संप्रेषित कर शिक्षा के उद्देश्यों को मूर्त रूप देता है और शिक्षार्थी को उसकी पूर्ण क्षमता तक पहुँचाने

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

में सहायता करता है। वह पाठ्यक्रम को तैयार करता है, शिक्षण-प्रक्रिया को संचालित करता है और अंततः शिक्षा को उसके चरम उद्देश्य – मानव के समग्र विकास – की दिशा में अग्रसर करता है।

शिक्षक की भूमिका केवल ज्ञान प्रदान करने तक सीमित नहीं होती, वह एक आदर्श, मार्गदर्शक, प्रेरणास्रोत और जीवन मूल्यों का संवाहक भी होता है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार, शिक्षा का अर्थ है 'गुरु-गृह-वास'। उनका तात्पर्य यह था कि शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान या औपचारिक कक्षाओं के माध्यम से नहीं दी जा सकती, बल्कि इसके लिए गुरु और शिष्य के बीच निकट संपर्क आवश्यक है। शिष्य को बाल्यावस्था से ही ऐसे शिक्षक के साथ रहना चाहिए जिनका चरित्र प्रज्वलित अग्नि के समान उज्ज्वल और प्रेरणादायक हो। जब शिक्षक स्वयं उच्च नैतिक मूल्यों, अनुशासन, समर्पण और ज्ञान से परिपूर्ण होता है, तभी वह अपने विद्यार्थियों के लिए सजीव आदर्श बन पाता है। भारतीय परंपरा में ज्ञान का संचार सदैव त्यागी और आध्यात्मिक दृष्टि रखने वाले व्यक्तियों द्वारा किया गया है। यही कारण है कि शिक्षक का स्थान केवल एक पेशेवर कर्मी का नहीं, बल्कि एक आदर्श पुरुष और मार्गदर्शक का माना गया है। शिक्षक आत्मानुभूति के माध्यम से परम सत्य को जानता है, और वही शिक्षक शिष्य को वास्तविक ज्ञान प्रदान कर सकता है। ऐसा ज्ञान केवल सूचना नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला, सत्य की अनुभूति और आत्मिक उत्थान का मार्ग होता है। एक सच्चा शिक्षक शिष्य को न केवल शैक्षणिक रूप से समर्थ बनाता है, बल्कि उसे आध्यात्मिक दृष्टि भी प्रदान करता है, जिससे वह इस मायामय संसार की समस्याओं से पार पाकर एक संतुलित, सशक्त और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व का निर्माण कर सके।

भारतीय शिक्षा परंपरा में शिक्षक को सृष्टिकर्ता, पालक और संहारक तीनों की भूमिकाओं का संवाहक माना गया है। वह सृष्टिकर्ता के रूप में ज्ञान और मूल्यों की नई दुनिया रचता है, पालक के रूप में छात्रों का मार्गदर्शन, संरक्षण और संवर्धन करता है तथा संहारक के रूप में अज्ञान, भ्रम और अवांछित प्रवृत्तियों को नष्ट करता है। इस दृष्टि से शिक्षक केवल ज्ञान के वाहक नहीं, बल्कि समाज के निर्माण में एक सृजनात्मक शक्ति के रूप में कार्य करता है। शिक्षक की संकल्पना केवल शैक्षणिक संस्था के भीतर सीमित नहीं होती, वह सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक जीवन का अभिन्न अंग होता है। शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक वह केंद्रीय कड़ी है जो शिक्षण के उद्देश्य, सामग्री और छात्र की ग्रहणशीलता को जोड़ती है। वह अपने ज्ञान, अनुभव और दृष्टिकोण से विद्यार्थियों के लिए एक ऐसी अनुकूल वातावरण का निर्माण करता है जिसमें विद्यार्थी अपनी बौद्धिक क्षमता के साथ-साथ भावनात्मक और नैतिक विकास भी कर सके। इसीलिए कहा गया है कि शिक्षक यदि श्रेष्ठ हो, तो शिक्षा की गुणवत्ता अपने आप श्रेष्ठ हो जाती है। किसी भी शैक्षणिक संस्थान की सफलता उसके भौतिक संसाधनों से नहीं, बल्कि उसके शिक्षकों की गुणवत्ता, दृष्टिकोण और समर्पण से निर्धारित होती है।

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

आधुनिक समय में भी शिक्षक की संकल्पना का महत्व कम नहीं हुआ है, बल्कि नई परिस्थितियों में उसकी भूमिका और भी व्यापक हो गई है। आज के शिक्षक को केवल विषय विशेषज्ञ बनकर नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे एक चिंतक, नवाचारक, जीवन कौशल प्रदाता और सामाजिक परिवर्तन के वाहक के रूप में कार्य करना चाहिए। वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और सामाजिक परिवर्तनों के इस युग में छात्रों को केवल जानकारी देना पर्याप्त नहीं है; उन्हें विचारशील, मूल्यनिष्ठ और आत्मनिर्भर नागरिक बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षक को अपने ज्ञान को निरंतर अद्यतन रखना होगा, नई शिक्षण तकनीकों को अपनाना होगा और छात्रों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण विकसित करना होगा। साथ ही, उसे अपने जीवन में ऐसे आदर्श स्थापित करने होंगे जो विद्यार्थियों को प्रेरित कर सकें। शिक्षक जब स्वयं सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रहता है, तो वह विद्यार्थियों के लिए एक जीवंत उदाहरण बनता है। इस प्रकार, शिक्षक की संकल्पना एक स्थिर अवधारणा नहीं है, बल्कि समय के साथ विकसित होती रहने वाली जीवंत प्रक्रिया है। किंतु इसका मूल तत्व आज भी वही है जो श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद में निहित था – शिक्षक ज्ञान का स्रोत नहीं, बल्कि ज्ञान का माध्यम होता है, जो अपने अनुभव और आत्मानुभूति के माध्यम से छात्रों को सत्य की दिशा में अग्रसर करता है।

3. शिक्षक का अर्थ

लोक व्यवहार में सामान्यतः अध्यापकों को शिक्षक कहा जाता है, किंतु शिक्षक शब्द का अर्थ मात्र औपचारिक अध्यापन करने वाले व्यक्ति तक सीमित नहीं है। वास्तव में शिक्षक का अर्थ है – महान व्यक्ति। महान वही है जो स्वयं को कृतकृत्य कर दूसरों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे। जब तक व्यक्ति स्वयं ज्ञानी नहीं होता, तब तक वह दूसरों को सच्चा उपदेश देने में सक्षम नहीं हो सकता। शिक्षक केवल वह नहीं होता जो मुख से उपदेश दे, बल्कि वह व्यक्ति भी शिक्षक होता है जो अपने जीवन के आदर्शों, अपने आचरण और जीवन दर्शन से दूसरों को सन्मार्ग पर अग्रसर कर देता है। शिक्षक अपने आचरण से एक जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिससे उसके संपर्क में आने वाले लोगों को प्रेरणा मिलती है। माता-पिता को भी समाज में शिक्षक कहा गया है, क्योंकि वे बच्चे के जीवन के प्रथम मार्गदर्शक होते हैं। इस प्रकार, शिक्षक की परिभाषा केवल एक पेशेवर भूमिका नहीं, बल्कि एक नैतिक और सामाजिक दायित्व का वहन करने वाला व्यक्तित्व है। स्वामी विवेकानंद के विचारों में भी शिक्षक को विशेष स्थान प्राप्त है। उन्होंने कहा कि शिक्षक को भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान होना चाहिए, जिससे वह बच्चों को लौकिक और पारलौकिक दोनों जीवनों के लिए सक्षम बना सके। एक सच्चा शिक्षक जीवन के व्यावहारिक पक्ष को भी सिखाता है और आत्मिक उन्नति का मार्ग भी दिखाता है।

स्वामी विवेकानंद ने शिक्षकों को दो वर्गों में विभाजित किया है – आध्यात्मिक शिक्षक और लौकिक शिक्षक। आध्यात्मिक शिक्षक कोई मात्र पुस्तक-प्रिय व्यक्ति नहीं होता, बल्कि वह एक सिद्ध

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

पुरुष होता है, जिसने परम् सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया हो। ऐसे शिक्षक की उपस्थिति में व्यक्ति की आत्मा जागृत होती है, उसकी चेतना ऊँचे स्तर पर पहुँचती है। स्वामी जी ने आध्यात्मिक शिक्षक की तुलना सूर्य से की है। जिस प्रकार सूर्य का उदय होते ही समस्त संसार के जीव-जंतु जागृत हो जाते हैं, उसी प्रकार एक महान आध्यात्मिक शिक्षक के सान्निध्य में आने से व्यक्ति की सुप्त आत्मा भी जागृत होने लगती है। स्वामी विवेकानंद ने यह भी कहा कि सच्चे शिक्षक स्वयं इस भवसागर को पार कर चुके होते हैं और बिना किसी स्वार्थ के दूसरों को भी पार कराने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार, आध्यात्मिक शिक्षक केवल ज्ञान का संप्रेषण ही नहीं करता, वह आत्मिक जागृति और जीवन परिवर्तन का माध्यम बनता है। वह विद्यार्थियों में न केवल ज्ञान, बल्कि आस्था, धैर्य, साहस और चरित्र का संचार करता है। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में गुरु का यही स्थान था — वह केवल शिक्षक नहीं, जीवन मार्गदर्शक और आत्मिक गुरु होता था।

दूसरे वर्ग में स्वामी विवेकानंद ने लौकिक शिक्षकों को रखा है। उनके अनुसार भारत के पतन का एक प्रमुख कारण था जनसामान्य में लौकिक शिक्षा का अभाव। उन्होंने यह माना कि पाश्चात्य देशों की उन्नति का मूल कारण लौकिक शिक्षा में निहित है। लौकिक शिक्षा में औद्योगिक, व्यावसायिक, तकनीकी, कृषि, भाषा और साहित्य आदि का व्यावहारिक ज्ञान सम्मिलित है। इसके लिए ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता है जो इन क्षेत्रों में दक्ष हों और विद्यार्थियों को जीवनोपयोगी कौशल प्रदान कर सकें। साथ ही, स्वामी जी ने यह भी स्पष्ट किया कि लौकिक शिक्षा धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से रहित नहीं होनी चाहिए। यदि लौकिक शिक्षक में नैतिकता और धार्मिक दृष्टिकोण का अभाव होगा, तो वह सच्ची शिक्षा प्रदान नहीं कर सकेगा। इसलिए लौकिक शिक्षा देने वाले शिक्षकों को भी धार्मिक विचारों से संपन्न होना चाहिए। इस प्रकार, स्वामी विवेकानंद ने लौकिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के शिक्षकों के बीच संतुलन पर बल दिया। आधुनिक समय में भी यह दृष्टिकोण प्रासंगिक है, क्योंकि शिक्षा केवल ज्ञान के हस्तांतरण तक सीमित नहीं है; यह व्यक्ति को समग्र रूप से तैयार करने की प्रक्रिया है।

स्वामी विवेकानंद ने ऐसे शिक्षकों की भी आलोचना की जिन्हें उन्होंने 'असत् शिक्षक' कहा। ये वे शिक्षक हैं जो ज्ञान में अल्पज्ञ होते हुए भी स्वयं को सर्वज्ञ और महापंडित समझते हैं। वे अज्ञान के अंधकार में डूबे रहते हैं, किंतु दूसरों को मार्गदर्शन देने का दावा करते हैं। ऐसे शिक्षक अपने शिष्यों को उसी अंधकार में धकेल देते हैं जिसमें वे स्वयं फंसे होते हैं। यह प्रकार्य शिक्षा के उद्देश्य के पूर्णतः विपरीत है। एक सच्चा शिक्षक विनम्र होता है, वह अपने ज्ञान की सीमाओं को समझता है और निरंतर सीखते रहने में विश्वास रखता है। वह स्वयं को सर्वज्ञ नहीं मानता, बल्कि ज्ञान के एक सेतु के रूप में कार्य करता है। इस दृष्टि से, शिक्षक का अर्थ केवल औपचारिक पदधारी व्यक्ति नहीं, बल्कि एक ऐसा

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

व्यक्तित्व है जो सत्य की खोज में संलग्न रहता है और उसी के अनुरूप अपने शिष्यों को प्रेरित करता है। शिक्षक का यह स्वरूप किसी भी शैक्षिक प्रणाली की गुणवत्ता का निर्धारण करता है।

स्वामी विवेकानंद ने शिक्षक में अनेक गुणों की अपेक्षा की है, जो उसके कर्तव्यों की सफलता के लिए आवश्यक हैं। पहला, शिक्षक को व्यावहारिक होना चाहिए ताकि वह मानव निर्माण के दायित्व को निभा सके। दूसरा, उसमें आध्यात्मिक दृष्टि का परिपक्वता होनी चाहिए और धार्मिक ग्रंथों के सारतत्वों का ज्ञान होना चाहिए। तीसरा, उसमें त्याग, साहस, उत्साह और विश्व-बंधुत्व जैसे गुणों का समावेश होना चाहिए। चौथा, उसका जीवन पवित्र और ब्रह्मचर्यपूर्ण होना चाहिए तथा उसमें दंड-विरोधी प्रवृत्ति होनी चाहिए ताकि वह छात्रों के साथ संवेदनशील और रचनात्मक ढंग से संवाद कर सके। पांचवां, शिक्षक को सफल मनोवैज्ञानिक होना चाहिए ताकि वह छात्रों की मानसिक संरचना, आवश्यकताओं और क्षमताओं को भलीभांति समझ सके। इन गुणों का समावेश शिक्षक को एक आदर्श रूप प्रदान करता है, जिससे वह विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक बनता है। एक ऐसा शिक्षक न केवल ज्ञान प्रदान करता है, बल्कि विद्यार्थियों के जीवन को दिशा देने वाला एक सशक्त मार्गदर्शक बनता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षक का अर्थ केवल पाठ्यक्रम को पूरा करने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि वह व्यक्तित्व है जो समाज के नव-निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाता है। भारतीय जीवन में आध्यात्मिकता की प्रधानता ने सदैव मानव समुदाय को आकर्षित किया है और शिक्षक इस परंपरा के संवाहक रहे हैं। भारत की शिक्षा और धर्म का आधार मूल रूप से आध्यात्मिक नींव पर अवलंबित रहा है। शिक्षक इस नींव को सुदृढ़ करते हुए विद्यार्थियों को केवल ज्ञान ही नहीं देता, बल्कि जीवन जीने की कला, नैतिक दृष्टि और आत्मिक उत्थान का मार्ग भी दिखाता है। समाज के नव निर्माण, सांस्कृतिक निरंतरता और नैतिक मूल्यों के संरक्षण में शिक्षक की भूमिका अपरिहार्य है। जो व्यक्ति परमोच्च कल्याण का मार्ग जानना चाहता है, उसे अंततः शिक्षक की शरण में जाना ही होता है, क्योंकि शिक्षक ही वह सेतु है जो अज्ञान से ज्ञान, अंधकार से प्रकाश और भ्रम से सत्य की ओर ले जाता है। इसीलिए भारतीय परंपरा में शिक्षक को गुरु, आचार्य और मार्गदर्शक के रूप में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है।

4. शिक्षार्थी

स्वामी विवेकानन्द के विचारों में शिक्षार्थी का स्थान शिक्षा प्रक्रिया में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उनका कहना था कि शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक बालक का जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई भी राष्ट्र उसी अनुपात में उन्नति करता है, जिस अनुपात में वहाँ के नागरिक शिक्षित होते हैं। जिस समाज में शिक्षा का प्रसार होता है, वहाँ के लोग आत्मनिर्भर, विवेकशील और प्रगतिशील बनते हैं। इसके विपरीत, जहाँ शिक्षा

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

का अभाव होता है, वहाँ अज्ञान, अंधविश्वास और पराधीनता का वास रहता है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने बलपूर्वक कहा कि देश की उन्नति के लिए जनसाधारण को शिक्षित करना अनिवार्य है। एक शिक्षित व्यक्ति कम से कम अपने पैरों पर खड़ा होना जान जाता है, वह अपने जीवन का नियोजन कर सकता है और समाज में सकारात्मक योगदान दे सकता है। जबकि एक अशिक्षित व्यक्ति अपने लिए भी कुछ करने की स्थिति में नहीं होता और दूसरों पर निर्भर रहता है। इसी कारण उन्होंने शिक्षा को न केवल व्यक्तिगत अधिकार बल्कि राष्ट्रीय उत्थान का आधार माना। शिक्षार्थी इस प्रक्रिया का केंद्र है, क्योंकि उसके बिना शिक्षा का कोई वास्तविक अर्थ नहीं रह जाता।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शिष्य की भूमिका को विशेष रूप से रेखांकित किया है। उन्होंने कहा, "शिक्षक तो लाखों मिलते हैं, पर शिष्य एक भी पाना कठिन है।" इसका तात्पर्य यह है कि योग्य शिक्षक की तुलना में योग्य शिक्षार्थी प्राप्त करना अधिक कठिन है। किसी भी शिक्षा प्रक्रिया की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शिक्षक और शिष्य दोनों ही अपनी-अपनी भूमिकाओं के प्रति सजग हों। शिक्षक यदि ज्ञानवान है, परंतु शिक्षार्थी में उस ज्ञान को ग्रहण करने की योग्यता और तत्परता नहीं है, तो शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए शिक्षार्थी में गहरी समझने की क्षमता, ग्रहणशीलता और सीखने की वास्तविक जिज्ञासा होनी चाहिए। ज्ञान केवल सुनने या पढ़ने से आत्मसात नहीं होता; इसके लिए मनन, चिंतन और अनुभव का समन्वय आवश्यक है। इस दृष्टि से शिक्षार्थी केवल निष्क्रिय ग्रहणकर्ता नहीं, बल्कि सक्रिय सहभागी होता है। वह शिक्षक से प्राप्त ज्ञान को समझता है, उसका विश्लेषण करता है और उसे अपने जीवन में लागू करने का प्रयास करता है।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षार्थी के कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया। उन्होंने कहा कि शिक्षा का वास्तविक कार्य है — सत्य की खोज। इसलिए शिक्षार्थी का प्रमुख कर्तव्य है कि वह केवल पुस्तकों को रटने या तथ्यों को कंठस्थ करने में समय न गंवाए, बल्कि यह समझने का प्रयास करे कि पुस्तकों में जो लिखा है, उसे वास्तव में कैसे सुना, समझा और आत्मसात किया जाए। शिक्षार्थी को बाह्य और आभ्यंतर दोनों ही जगत का सूक्ष्म अवलोकन करना चाहिए, ताकि वह जीवन के विभिन्न पक्षों को गहराई से समझ सके। सीखने के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है, परंतु इस स्वतंत्रता के साथ जिम्मेदारी भी जुड़ी होती है। एक सच्चे शिक्षार्थी का कर्तव्य है कि वह कभी भी सीखना बंद न करे, निरंतर जिज्ञासु और सक्रिय बना रहे। स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि शिक्षा कोई एक बार की प्रक्रिया नहीं, बल्कि आजीवन चलने वाली साधना है। एक शिक्षार्थी का मन खुला होना चाहिए, वह नए विचारों, अनुभवों और सत्यों को ग्रहण करने के लिए तत्पर रहे।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षार्थी को कुछ मूलभूत आचारों और अनुशासनों का पालन करना चाहिए। प्रथम, ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। उनके अनुसार भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य जीवन का आधार है। यह केवल शारीरिक संयम ही नहीं, बल्कि मानसिक एकाग्रता, शुद्धता और आत्मनियंत्रण का भी प्रतीक है। द्वितीय, इन्द्रिय निग्रह। उन्होंने कहा कि जो शिक्षार्थी अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं रखते, उनमें सीखने की प्रबल इच्छा उत्पन्न नहीं होती। वे न तो शिक्षक में श्रद्धा रख पाते हैं और न ही सत्य को जानने की गंभीरता उनमें विकसित हो पाती है। तृतीय, शिक्षार्थी को संयमी और जिज्ञासु होना चाहिए। संयम उसे एकाग्रता, अनुशासन और धैर्य प्रदान करता है, जबकि जिज्ञासा उसे नए ज्ञान की खोज में प्रेरित करती है। इन गुणों के बिना शिक्षार्थी ज्ञान की गहराइयों में प्रवेश नहीं कर सकता। विवेकानन्द का दृष्टिकोण शिक्षार्थी को केवल एक विद्यार्थी नहीं, बल्कि एक साधक और खोजी के रूप में देखता है, जो सत्य की दिशा में अग्रसर होता है।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षार्थी में कुछ विशिष्ट गुणों को समाहित करने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि शिक्षार्थी को शरीर और मन से बलवान होना चाहिए। एक स्वस्थ शरीर और दृढ़ मन के बिना गहन अध्ययन और साधना संभव नहीं। शिक्षार्थी को विद्याप्रेमी, विवेकशील, विचारशील, स्वप्रयत्नशील और कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। उसे शिक्षक के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए और भोग-विलास से दूर रहते हुए ज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। उसमें सत्य को जानने की तीव्र आकांक्षा होनी चाहिए, क्योंकि यही जिज्ञासा उसे गहन अध्ययन और आत्मचिंतन की ओर प्रेरित करती है। इसके साथ ही उसमें उचित इच्छाशक्ति और चित्त की एकाग्रता की क्षमता होनी चाहिए। ऐसा शिक्षार्थी न केवल ज्ञान को ग्रहण करता है, बल्कि उसे जीवन में रूपांतरित करने में सक्षम होता है। इसके अतिरिक्त, शिष्य को धार्मिक क्रियाओं और आध्यात्मिकता में आस्था रखनी चाहिए, जिससे उसके भीतर नैतिकता, अनुशासन और आंतरिक शांति का विकास हो सके।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षार्थी की भूमिका केवल जानकारी प्राप्त करने तक सीमित नहीं है। वह एक सक्रिय साधक, खोजी और ज्ञान का सच्चा अनुरागी होता है। शिक्षक और शिक्षार्थी का संबंध केवल एकतरफा नहीं, बल्कि परस्पर सहयोग और विश्वास पर आधारित होता है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा — "शिक्षक लाखों मिलते हैं, पर शिष्य एक भी दुर्लभ होता है।" इसका अर्थ यह है कि सच्चा शिक्षार्थी वह होता है जो अपने भीतर अनुशासन, जिज्ञासा, श्रद्धा और आत्मनियंत्रण को विकसित करता है। जब शिक्षार्थी इन गुणों से परिपूर्ण होता है, तभी वह शिक्षा के माध्यम से न केवल अपना जीवन, बल्कि समाज और राष्ट्र का भी उत्थान कर सकता है। भारत के शिक्षा दर्शन में शिक्षार्थी को उतनी ही महत्ता दी गई है जितनी शिक्षक को। क्योंकि शिक्षक चाहे कितना भी ज्ञानवान क्यों न हो, यदि शिक्षार्थी उपयुक्त न हो, तो ज्ञान का संप्रेषण संभव नहीं। इसीलिए एक आदर्श शिक्षार्थी राष्ट्र निर्माण का आधारस्तंभ होता है — वही आने वाले समय का योग्य नागरिक, विचारक और नेतृत्वकर्ता बनता है।

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

5. गुरू-शिष्य सम्बन्ध

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था में गुरु–शिष्य संबंध को अत्यंत गहरा और पवित्र स्थान प्रदान किया। उनका कहना था कि भारत में गुरु–शिष्य संबंध वैसी ही परंपरा है जैसे पुत्र का गोद लिया जाना। शिक्षक को उन्होंने पिता से भी बढ़कर माना और शिष्य को शिक्षक का आध्यात्मिक या मानस पुत्र बताया। विवेकानन्द के अनुसार, पिता हमें केवल शरीर प्रदान करता है, लेकिन शिक्षक हमें मुक्ति का मार्ग दिखाता है, इसलिए शिक्षक का स्थान सर्वोच्च है। शिक्षक के प्रति यह श्रद्धा और समर्पण आजीवन बना रहता है, यह संबंध कभी समाप्त नहीं होता। शिक्षक चाहे आयु में छोटा ही क्यों न हो और शिष्य वृद्ध, फिर भी गुरु–शिष्य संबंध में शिष्य अपने को 'पुत्र' और शिक्षक को 'पिता' कहकर संबोधित करता है। इस दृष्टिकोण से गुरु केवल ज्ञानदाता नहीं, बल्कि मार्गदर्शक, उद्धारक और आध्यात्मिक पिता होता है। स्वामी जी ने इस संबंध की गहराई को अनुभव किया और कहा कि यह संबंध केवल औपचारिक शिक्षा तक सीमित नहीं, बल्कि यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आत्मा से आत्मा का संबंध बन जाता है।

स्वामी विवेकानन्द ने गुरु–शिष्य संबंध को भारतीय शिक्षा की आत्मा बताया। उन्होंने कहा कि वास्तविक शिक्षक वही है जो बालक के मानसिक स्तर के अनुरूप स्वयं को ढाल सके और अपनी अंतःप्रेरणा तथा विचारों को शिष्य की अंतःप्रेरणा में प्रविष्ट करा सके। शिक्षा को उन्होंने केवल सूचनाओं के प्रसारण तक सीमित नहीं माना; उनके अनुसार शिक्षक को चाहिए कि वह बालक की क्षमता के अनुसार ही ज्ञान दे, उस पर अनावश्यक बोझ न डाले। इसी कारण उन्होंने गुरुकुल वास की व्यवस्था की प्रशंसा की। गुरुकुल प्रणाली में शिक्षक और शिष्य निकटता में रहते थे, जिससे शिक्षक शिष्य को न केवल विद्या प्रदान करता था, बल्कि अपने व्यक्तित्व, आचरण और जीवन से भी गहन प्रभाव डालता था। शिष्य अपने गुरु की सेवा, समर्पण और आदर्शों को देखकर जीवन के मूल्यों को आत्मसात करता था। इस पद्धति में शिक्षा केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण, आत्मानुशासन और आध्यात्मिक उन्नति का भी माध्यम थी।

स्वामी विवेकानन्द प्राचीन भारतीय परंपरा के प्रबल समर्थक थे, जिसमें गुरु–शिष्य का संबंध अत्यंत घनिष्ठ और जीवंत था। उन्होंने शिक्षा क्षेत्र में पुनः उसी प्रणाली को स्थापित करने का आह्वान किया। उनके अनुसार, "पहले हमें गुरु–गृह वास और उस जैसी अन्य शिक्षा प्रणालियों को पुनर्जीवित करना होगा। आज हमें आवश्यकता है वेदान्त युक्त पाश्चात्य विज्ञान की, ब्रह्मचर्य के आदर्श, श्रद्धा और आत्मविश्वास की। दूसरी बात जिसकी आवश्यकता है, वह है उस शिक्षा पद्धति का निर्मूलन, जो मार–मार कर गधों को घोड़ा बनाती है।" यह कथन स्पष्ट करता है कि स्वामी जी आधुनिक शिक्षा पद्धति में यांत्रिकता, प्रतिस्पर्धा और मात्र जानकारी भरने की प्रवृत्ति से असंतुष्ट थे। वे चाहते थे कि शिक्षा का केंद्र

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

शिक्षक और शिष्य का जीवंत संबंध बने, जिसमें गुरु शिष्य को जीवन की सच्ची दिशा दिखाए और शिष्य श्रद्धा और समर्पण के साथ ज्ञान को आत्मसात करे।

यदि हम अतीत की ओर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि प्राचीन भारत में गुरु–शिष्य की परंपरा अत्यंत स्वस्थ, सुदृढ़ और मूल्यप्रधान थी। उस समय शिक्षक का कोई विकल्प नहीं था; गुरु न केवल शिष्य का मार्गदर्शक था, बल्कि समाज का भी पूजनीय और सम्मानित व्यक्ति होता था। शिक्षक अधिकतर ऋषि या मुनि हुआ करते थे, जो केवल पुस्तकें नहीं पढ़ाते थे बल्कि शिष्य के चरित्र और क्षमता की कसौटी पर उसे परखते थे। जो शिष्य इस कसौटी पर खरा उतरता था, उसे संपूर्ण ज्ञान प्रदान किया जाता था। सत्यकाम जाबालि जैसे शिष्यों ने इस परंपरा का उदाहरण प्रस्तुत किया। गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र, धौम्य, सान्दीपनि, परशुराम आदि के नाम इस गौरवशाली परंपरा में अमर हैं। ये गुरु केवल ज्ञान देने वाले नहीं थे, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शिष्य के प्रेरणास्रोत और आदर्श थे। उनकी शिक्षा का उद्देश्य शिष्य को एक आदर्श मनुष्य बनाना था, जो समाज, राष्ट्र और मानवता के कल्याण में योगदान दे सके।

शिक्षक को स्वामी विवेकानन्द ने उस दीपक के समान बताया जो स्वयं को जलाकर दूसरों के जीवन को प्रकाशित करता है। ज्ञान उस प्रकाशपुंज के समान है जो भ्रमित, विचलित और अंधकार में भटके मानव को सही दिशा प्रदान करता है। लेकिन आधुनिक समाज में व्याप्त स्वार्थपरता, धनलोलुप राजनीति और सूचना तंत्रों के बढ़ते प्रभाव ने शिक्षा के स्वरूप को बदल दिया है। शिक्षक की भूमिका धीरे–धीरे आदर्श से हटकर पेशेवर और भौतिकवादी होती जा रही है। गुरु–शिष्य संबंध में जो आत्मीयता, श्रद्धा और समर्पण था, वह कम होता जा रहा है। शिक्षा अब शिक्षक–केन्द्रित न होकर धन–केन्द्रित बनती जा रही है। स्वामी विवेकानन्द ने इस स्थिति पर चिंता व्यक्त की और कहा कि हमें गुरु–शिष्य के आदर्श संबंध को पुनर्जीवित करना होगा। शिक्षक को पुनः वही आदर्श और त्यागमयी भूमिका निभानी होगी जो प्राचीन काल में थी, और शिष्य को भी उसी श्रद्धा और समर्पण के साथ गुरु के प्रति आस्था रखनी होगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुरु–शिष्य संबंध केवल शैक्षिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक आधार भी है। यह संबंध भारतीय शिक्षा दर्शन की नींव है। शिक्षक को आध्यात्मिक पिता और शिष्य को उसका मानस पुत्र माना गया है। इस संबंध में गुरु का कर्तव्य है शिष्य को मुक्ति और सत्य के मार्ग पर अग्रसर करना, जबकि शिष्य का कर्तव्य है गुरु के प्रति श्रद्धा, आज्ञापालन और ज्ञान को आत्मसात करने की गहरी इच्छा रखना। आज के समय में जबकि शिक्षा का व्यावसायीकरण और तकनीकीकरण बढ़ रहा है, इस आदर्श संबंध की पुनर्स्थापना और भी आवश्यक हो गई है। गुरु और शिष्य के बीच सच्चा संबंध शिक्षा को केवल जानकारी देने की प्रक्रिया से ऊपर उठाकर जीवन निर्माण

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

की प्रक्रिया बना देता है। स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि गुरु–शिष्य संबंध ही वह सूत्र है जो ज्ञान, संस्कृति और आध्यात्मिकता को पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रखता है। यही भारतीय शिक्षा का मूल है और इसी से समाज का वास्तविक उत्थान संभव है।

6. प्रासंगिकता तथा संकल्पना सुझाव

1. शिक्षक राष्ट्र-निर्माता कहलाते हैं, इसलिए उनका दायित्व केवल शिक्षण संस्थानों में पढ़ाना ही नहीं है, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास में सक्रिय भूमिका निभाना भी है। उन्हें विद्यार्थियों में नैतिकता, जिम्मेदारी और सामाजिक चेतना का विकास करना चाहिए ताकि वे आदर्श नागरिक बन सकें। शिक्षक समाज में मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं और उनके आचरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है।
2. वर्तमान समय में शिक्षकों के प्रति समाज में असंतोष बढ़ा है। यह आरोप लगाया जाता है कि अनेक शिक्षक शिक्षण कार्य की उपेक्षा कर ट्यूशन व अन्य साधनों से आर्थिक लाभ कमाने पर अधिक ध्यान देते हैं। इस स्थिति में सुधार के लिए शिक्षकों के कार्य मूल्यांकन को परीक्षा परिणामों से जोड़ा जाना चाहिए ताकि उत्तरदायित्व और गुणवत्ता में वृद्धि हो सके।
3. विद्यार्थियों के जीवन निर्माण में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इसलिए उनके लिए नवीन शिक्षण तकनीकों से परिचित होना अनिवार्य है। इसके लिए अंतःसेवा प्रशिक्षण, पुनश्चर्या पाठ्यक्रम और ग्रीष्मावकाश शिविरों की नियमित व्यवस्था होनी चाहिए, जिनमें प्रत्येक शिक्षक को समय-समय पर भाग लेना आवश्यक हो। इससे शिक्षा की गुणवत्ता और शिक्षक की दक्षता दोनों में सुधार होगा।
4. आधुनिक युग में ज्ञान का अभूतपूर्व विस्तार हुआ है। ऐसे में विद्यार्थियों को अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में अधिक जानकारी रखना आवश्यक है, अन्यथा वे प्रतिस्पर्धी युग में पिछड़ सकते हैं। उन्हें नवीनतम ज्ञान, वैज्ञानिक सोच और वैश्विक दृष्टिकोण अपनाना होगा ताकि वे जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकें।
5. आधुनिक युग के विद्यार्थियों को लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक आदर्शों की जानकारी होना अनिवार्य है। उन्हें समानता, स्वतंत्रता, सहयोग और सहिष्णुता जैसे मूल्यों को समझना चाहिए, जिससे वे एक जिम्मेदार और जागरूक नागरिक बन सकें। लोकतांत्रिक भावों की समझ उनके व्यक्तित्व विकास और सामाजिक सहभागिता को गहराई प्रदान करती है।
6. शिक्षार्थियों को यह जानना चाहिए कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने सामाजिक जीवन को किस प्रकार परिवर्तित किया है। विज्ञान ने जीवन को अधिक सुविधाजनक, संगठित और उन्नत बनाया है। इसलिए विद्यार्थियों को सामाजिक कल्याण में विज्ञान की भूमिका को समझना और उसका व्यावहारिक उपयोग सीखना चाहिए ताकि वे समाज के विकास में योगदान दे सकें।

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

7. आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों ने देशों के बीच की सीमाएं मिटा दी हैं और एक वैश्विक एकता स्थापित की है। इसलिए शिक्षार्थियों में अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित करना आवश्यक है। उन्हें विश्व की समस्याओं को मानवता की साझा चुनौतियों के रूप में समझने और उनका समाधान वैश्विक दृष्टि से खोजने की आदत डालनी चाहिए।
8. संकीर्ण विशेषीकरण के दुष्प्रभावों से बचने के लिए विद्यार्थियों को भौतिक और सामाजिक विज्ञानों के साथ मानवता के संबंध को समझना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि इस प्रकार का समग्र ज्ञान विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक होगा। यह उन्हें केवल विशेषज्ञ ही नहीं, बल्कि संवेदनशील और जागरूक नागरिक भी बनाएगा।

सन्दर्भ

1. बसु, शंकारी प्रसाद. *विवेकानन्द: ए बायोग्राफी.* यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1971.
2. भट्टाचार्य, एस. *स्वामी विवेकानन्द एंड हिज फिलॉसफी ऑफ एजुकेशन.* नई दिल्ली: मित्तल पब्लिकेशन्स, 2000, पृ. 45–63.
3. भट्टाचार्य, एस. के. *स्वामी विवेकानन्द्स एजुकेशनल विज़न.* अटलांटिक पब्लिशर्स, 2006.
4. भुयाँ, पी. *स्वामी विवेकानन्द: मसीहा ऑफ रिजर्जेंट इंडिया.* ए.पी.एच. पब्लिशिंग, 2003.
5. चन्द्र, रमेश. *फिलॉसॉफिकल फाउंडेशन्स ऑफ एजुकेशन इन इंडिया.* कनिष्का पब्लिशर्स, 2005, पृ. 143–156.
6. चैटरजी, मार्गरिट. *विवेकानन्द एंड द मेकिंग ऑफ मॉडर्न इंडिया.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998, पृ. 201–225.
7. दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ. *ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी.* खंड 5. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1955.
8. दे, एस. के. *स्वामी विवेकानन्द ऑन एजुकेशन.* रामकृष्ण मिशन, 1976, पृ. 34–49.
9. "गुरु-शिष्य परम्परा।" *रामकृष्ण मिशन आधिकारिक वेबसाइट,* www.ramakrishna.org/gurushishya. अभिगम 5 अक्तूबर 2025.
10. घोष, शंकारी प्रसाद. *एजुकेशनल आइडियाज ऑफ स्वामी विवेकानन्द.* कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, 1977.
11. मजुमदार, ए. के. *विवेकानन्द: हिज कॉल टू द नेशन.* भारतीय विद्या भवन, 1963.
12. मुखर्जी, के. *विवेकानन्द्स एजुकेशनल थॉट.* क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, 1985.
13. नंदा, बी. आर. *इंडियन फिलॉसफी एंड एजुकेशन.* डीप एंड डीप पब्लिकेशन्स, 2002.
14. पांडेय, आर. एस. *प्रिंसिपल्स ऑफ एजुकेशन.* विनोद पुस्तक मन्दिर, 2003.
15. प्रभानन्द, स्वामी. *द इटरनल मेसेजेस ऑफ स्वामी विवेकानन्द.* रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर, 2001, पृ. 78–95.

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

16. पुरकायस्थ, अरुण. *द गुरु-शिष्य ट्रेडिशन इन इंडियन कल्चर*. नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग, 1991.
17. रंगनाथानन्द, स्वामी. *विवेकानन्द: हिज गॉस्पेल ऑफ मैन-मेकिंग*. भारतीय विद्या भवन, 1984, पृ. 102–118.
18. राव, टी. वी. *एजुकेशन एंड फिलॉसफी ऑफ स्वामी विवेकानन्द*. डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, 2001.
19. शर्मा, राम नाथ. *फिलॉसॉफिकल एंड सोशियोलॉजिकल फाउंडेशन्स ऑफ एजुकेशन*. सुरजीत पब्लिकेशन्स, 2005.
20. सिंह, आर. पी. *एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ स्वामी विवेकानन्द*. कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, 1993, पृ. 56–67.
21. "स्वामी विवेकानन्द्स व्यूज़ ऑन टीचर-स्टूडेंट रिलेशनशिप।" *विवेकानन्द केन्द्र पत्रिका*, खंड 42, अंक 3, 2020, पृ. 45–58.
22. त्यागी, एस. एन. *एजुकेशन इन एंशिएंट एंड मीडीवल इंडिया*. आत्मा राम एंड सन्स, 1962.
23. विद्यालंकार, प्रभु दत्त. *इंडियन एजुकेशन थ्रू द एजेस*. किताब महल, 1967.
24. विवेकानन्द, स्वामी. *द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द*. अद्वैत आश्रम, 1989, पृ. 112–130.